जटासिंहनन्दि का वराङ्गचरित और उसकी परम्परा

जटासिंहनन्दि और उनके वराङ्गचरित के दिगम्बर परम्परा से भिन्न यापनीय अथवा कूर्चक संघ से सम्बन्धित होने के कुछ प्रमाण उपलब्ध होते हैं। यद्यपि श्रीमती कुसुम पटोरिया के अनुसार वराङ्गचरित में ऐसा कोई भी अन्तरङ्ग साक्ष्य उपलब्ध नहीं है जिससे[१] जटासिंहनन्दि और उनके ग्रन्थ को यापनीय कहा जा सके, किन्तु मेरी दृष्टि में श्रीमती कुसुम पटोरिया का यह कथन समुचित नहीं है। सम्भवत: उन्होंने मूल ग्रन्थ को देखने का प्रयत्न ही नहीं किया और द्वितीयक स्रोतों से उपलब्ध सूचनाओं के आधार पर ऐसा मानस बना लिया।

मैंने यथासम्भव मूल ग्रन्थ को देखने का प्रयास किया है और उसमें मुझे ऐसे अनेक तत्त्व मिले हैं जिनके आधार पर वराङ्गचरित और उसके कर्त्ता जटिल मुनि या जटासिंहनन्दि को दिगम्बर परम्परा से इतर यापनीय अथवा कूर्चक परम्परा से सम्बद्ध माना जा सकता है। इस विवेचन में सर्वप्रथम तो मैं श्रीमती कुसुम पटोरिया के द्वारा प्रस्तुत उन बाह्य साक्ष्यों की चर्चा करूंगा जिनके आधार पर जटासिंहनन्दि के यापनीय होने की संभावना को पुष्ट किया जाता है। उसके पश्चात् मूल ग्रन्थ में मुझे दिगम्बर मान्यताओं से भिन्न जो तथ्य उपलब्ध हुए हैं, उनकी चर्चा करके यह दिखाने का प्रयत्न करूंगा कि जटासिंहनन्दि यापनीय अथवा कूर्चक परंम्परा में से किसी एक से सम्बद्ध रहे होंगे।

जटासिंहनन्दि यापनीय संघ से सम्बन्धित थे या कूर्चक संघ से सम्बन्धित थे, इस सम्बन्ध में तो अभी और भी सूक्ष्म अध्ययन की आवश्यकता है किन्तु इतना निश्चित है कि वे दिगम्बर परम्परा से भिन्न अन्य किसी परम्परा से सम्बन्धित हैं क्योंकि उनकी अनेक मान्यताएं वर्तमान दिगम्बर परम्परा के विरोध में जाती हैं। आइए, इन तथ्यों की समीक्षा करें -

१. जिनसेन प्रथम (पुन्नाटसंघीय) ने अपने हरिवंशपुराण (ई० सन् ७८३) में,[२] जिनसेन द्वितीय (पंचस्तूपान्वयी) ने अपने आदि पुराण में,[३] उद्योतनसूरि (श्वे० आचार्य) ने अपनी कुवलयमाला (ई०सन् ७७८) में,[४] राचमल्ल ने अपने कन्नड़ गद्य ग्रन्थ त्रिषष्ठिशलाकापुरुष (ई० सन् ९७४-८४) में,[५] धवल कवि ने अपभ्रंश भाषा में रचित अपने हरिवंश में,[६] जटिलमुनि अथवा उनके वरांगचरित का उल्लेख किया है। इनके अतिरिक्त भी पम्प ने अपने आदि पुराण (ई० सन् ९४१)[७] में, नयनसेन ने अपने धर्मामृत (ई० सन् १११२)[८] में और पार्श्वपंडित ने पार्श्वपुराण (ई० सन् १२०५) में,[९] जन्न ने अपने अनन्तनाथ पुराण (ई० सन् १२०९) में,[१०] गुणवर्ग द्वितीय ने अपने पुष्पदंतपुराण (ई० सन् १२३०)[११] में, कमल भवन ने शांतिनाथ पुराण (ई० सन् १२३३)[१२] में और महाबल कवि ने अपने नेमिनाथ पुराण (ई० सन् १२५४) में,[१३] जटासिंहनन्दि का उल्लेख किया है।

इन सभी उल्लेखों से यह ज्ञात होता है कि जटासिंहनन्दि यापनीय, श्वेताम्बर और दिगम्बर तीनों ही परम्पराओं में मान्य रहे हैं। फिर भी सर्वप्रथम पुन्नाटसंघीय जिनसेन के द्वारा जटासिंहनन्दि का आदरपूर्वक उल्लेख यह बताता है कि वे सम्भवत: यापनीय परम्परा से सम्बन्धित रहे हों।[१४] क्योंकि पुन्नाटसंघ का विकास यापनीय पुन्नागवृक्ष मूलगण से ही हुआ है।[१५] पुन: श्वेताम्बर आचार्य उद्योतनसूरि ने यापनीय आचार्य रविषेण और उनके ग्रन्थ पद्मचरित के साथ-साथ जटासिंहनन्दि के वराङ्ग-चरित का उल्लेख किया है। इससे ऐसी कल्पना की जा सकती है कि दोनों एक ही परम्परा के और समकालिक रहे होंगे। पुन: श्वेताम्बर और यापनीय में एक-दूसरे के ग्रन्थों के अध्ययन की परम्परा रही है। यापनीय आचार्य प्राचीन श्वेताम्बर आचार्यों के ग्रन्थों को पढ़ते थे। जटासिंहनन्दि के द्वारा प्रकीर्णकों, आवश्यकनिर्युक्ति तथा सिद्धसेन के सन्मति तर्क और विमलसूरि के पउमचरिय का अनुसरण यही बताता है कि वे यापनीय सम्प्रदाय से सम्बन्धित रहे होंगे। क्योंकि यापनीयों द्वारा इन ग्रन्थों का अध्ययन-अध्यापन एवं अनुसरण किया जाता था, इसके अनेक प्रमाण दिए जा सकते हैं। यह हो सकता है कि जटासिंहनन्दि यापनीय न होकर कूर्चक सम्प्रदाय से सम्बन्धित रहे हों और यह कूर्चक सम्प्रदाय भी यापनीयों की भांति श्वेताम्बरों के अति निकट रहा हो। यद्यपि इस सम्बन्ध में विस्तृत गवेषणा अभी अपेक्षित है।

२. जटासिंहनन्दि यापनीय परम्परा से सम्बद्ध रहे हैं, इस सम्बन्ध में जो बाह्य साक्ष्य उपलब्ध हैं उनमें प्रथम यह है कि कन्नड़ कवि जन्न ने जटासिंहनन्दि को 'काणूरगण' का बताया है। अनेक अभिलेखों से यह सिद्ध होता है कि यह काणूरगण प्रारम्भ में यापनीय परम्परा का एक गण था। इस गण का सर्वप्रथम उल्लेख सौदंती के ई० सन् दसवीं शती (९८८) के एक अभिलेख में मिलता है। इस अभिलेख में गण के साथ यापनीय संघ का भी स्पष्ट निर्देष है।[१६] यह सम्भव है कि इस गण का अस्तित्व इसके पूर्व सातवीं-आठवीं सदी में भी रहा हो। डॉ० उपाध्ये जन्न के इस अभिलेख को शंका की दृष्टि से देखते हैं। उनकी इस शंका के दो कारण हैं- एक तो यह कि गणों की उत्पत्ति और इतिहास के विषय में पर्याप्त जानकारी का अभाव है, दूसरे जटासिंहनन्दि जन्न के समकालीन भी नहीं हैं[१७]। यह सत्य है कि दोनों में लगभग पांच सौ वर्ष का अन्तराल है किन्तु मात्र कालभेद के कारण जन्न का कथन भ्रांत हो, हम डॉ० उपाध्ये के इस मन्तव्य से सहमत नहीं हैं। यह ठीक है कि यापनीय परम्परा के काणूर आदि कुछ गणों का उल्लेख आगे चलकर मूलसंघ और कुन्दकुन्दान्वय के साथ भी हुआ है[१८] किन्तु इससे उनका मूल में यापनीय होना अप्रमाणित नहीं हो जाता। काणूरगण के ही १२वीं शताब्दी तक के अभिलेखों में यापनीय संघ के उल्लेख उपलब्ध होते है (देखें- जैन शिलालेख संग्रह, भाग ५, लेख क्रमांक १-७)। इसके अतिरिक्त स्वयं डॉ० उपाध्ये ने १२ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के कुछ शिलालेखों में काणूरगण के सिंहनन्दि के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उल्लेख को स्वीकार किया है[१९]। यद्यपि इन लेखों में काणूरगण के इन सिंहनन्दि को कहीं मूलसंघ और कहीं कुन्दकुन्दान्वय का बताया गया है। लेकिन स्मरण रखना होगा कि यह लेख उस समय का है जब यापनीय गण भी अपने को मूलसंघ से जोड़ने लगे थे। पुन: इन लेखों में सिंहनन्दि का काणूरगण के आद्याचार्य के रूप में उल्लेख है। उनकी परम्परा में प्रभाचन्द्र, गुणचन्द्र, माघनन्दि, प्रभाचन्द्र, अनन्तवीर्य, मुनिचन्द्र, प्रभाचंद आदि का उल्लेख है- यह लेख तो बहुत समय पश्चात् लिखा गया है। पुन: इन लेखों में भी प्रारम्भ में जटासिंहनन्दि आचार्य का उल्लेख है, वहां न तो मूलसंघ का उल्लेख है और न कुन्दकुन्दान्वय का। वहां मात्र काणूरगण का उल्लेख है। यह काणूरगण प्रारम्भ में यापनीय गण था। अत: सिद्ध है कि जटासिंहनन्दि काणूरगण के आद्याचार्य रहे होंगे। इन शिलालेखों में सिंहनन्दि को गंग वंश का समुद्धारक कहा गया है। यदि गंग वंश का प्रारम्भ ई० सन् चतुर्थ शती माना जाता है तो गंगवंश के संस्थापक सिंहनन्दि जटासिंहनन्दि से भिन्न होने चाहिए। पुन: काणूरगण का अस्तित्व भी ई० सन् की ७ वीं-८ वीं शती के पूर्व ज्ञात नहीं होता है। सम्भावना यही है कि जटासिंहनन्दि काणूरगण के आद्याचार्य रहे हों और उनका गंग वंश पर अधिक प्रभाव रहा हो। अत: आगे चलकर उन्हें गंगवंश का उद्धारक मान लिया गया हो तथा गंगवंश के उद्धार की कथा उनसे जोड़ दी गई हो।

३. जन्न ने अनन्तनाथ पुराण में न केवल जटासिंहनन्दि का उल्लेख किया है अपितु उनके साथ-साथ ही काणूरगण के इन्द्रनन्दि आचार्य का भी उल्लेख किया है[२०]। हम छेदपिण्ड शास्त्र की परम्परा की चर्चा करते समय अनेक प्रमाणों से यह सिद्ध कर चुके हैं कि जटासिंहनन्दि के समकालीन या उनसे किंचित् परवर्ती ये इन्द्रनन्दि रहे हैं[२१] जिनका उल्लेख शाकटायन आदि अनेक यापनीय आचार्यों ने किया है। जन्न ने जटासिंहनन्दि और इन्द्रनन्दि दोनों को काणूरगण का बताया है। इससे उनके कथन में अविश्वसनीयता जैसी कोई बात नहीं लगती है।

४. कोप्पल में उपलब्ध (पुरानी कन्नड़ में) एक लेख भी उपलब्ध होता है जिसके अनुसार जटासिंहनन्दि के चरण-चिह्नों को चाव्वय ने बनवाया था[२२]। इससे यह सिद्ध होता है कि जटासिंहनन्दि का समाधिमरण सम्भवत: कोप्पल में हुआ हो। पुन: डॉ० उपाध्ये ने गणभेद नामक अप्रकाशित कन्नड़ ग्रंथ के आधार पर यह भी मान लिया है कि कोप्पल या कोपन यापनीयों की मुख्य पीठ थी[२३]। अत: कोप्पल/कोपन से सम्बन्धित होने के कारण जटासिंहनन्दि के यापनीय होने की सम्भावना अधिक प्रबल प्रतीत होती है।

५. यापनीय परम्परा में मुनि के लिए 'यति' का प्रयोग अधिक प्रचलित रहा है। यापनीय आचार्य पाल्यकीर्ति शाकटायन को 'यतिग्रामाग्रणी' कहा गया है। हम देखते हैं कि जटासिंहनन्दि के इस वराङ्गचरित में भी मुनि के लिए यति शब्द का प्रयोग बहुतायत से हुआ है[२४]। ग्रन्थकार की यह प्रवृत्ति उसके यापनीय होने का संकेत करती है।

६. वराङ्गचरित में सिद्धसेन के "सन्मति तर्क" का बहुत अधिक अनुसरण देखा जाता है। अनेक आधारों से यह सिद्ध होता है कि सन्मति तर्क के कर्त्ता सिद्धसेन किसी भी स्थिति में दिगम्बर परम्परा- से सम्बद्ध नहीं रहे हैं। यदि वे पाँचवी शती के पश्चात् हुए हैं तो निश्चित ही श्वेताम्बर हैं और यदि उसके पूर्व हुए हैं तो अधिक से अधिक श्वेताम्बर और यापनीय परम्परा की पूर्वज उत्तरभारतीय निर्ग्रन्थ धारा से सम्बद्ध रहे हैं। उनके 'सन्मति तर्क' में क्रमवाद के साथ-साथ युगपद्वाद की समीक्षा, आगमिक परम्परा का अनुसरण, कृति का महाराष्ट्री प्राकृत में होना आदि तथ्य इस संभावना को पुष्ट करते हैं। वराङ्गचरित के २६ वें सर्ग के अनेक श्लोक 'सन्मति तर्क' के प्रथम और तृतीय काण्ड की गाथाओं का संस्कृत रूपांतरण मात्र लगते हैं -

देखें -

वराङ्गचरित	सन्मति तर्क	वराङ्गचरित	सन्मति तर्क
२६/५२	१/६	२६/६५	१/५२
२६/५३	१/९	२६/६९	३/४७
२६/५४	१/११	२६/७०	३/५४
२६/५५	१/१२	२६/७१	३/५५
२६/५७	१/१७	२६/७२	३/५३
२६/५८	१/१८	२६/७८	३/६९
२६/६०	१२२१	२६/९०	३/६९
२६/६१	१/२५	२६/९९	३/६७
२६/६२	१/२३-२४	२६/१००	३/६८
२६/६३	१/२५		
२६/६४	१/५१		

वराङ्गचरितकार जटासिंहनन्दि द्वारा सिद्धसेन का यह अनुसरण इस बात का सूचक है कि वे सिद्धसेन से निकट रूप से जुड़े हुए हैं। सिद्धसेन का प्रभाव श्वेताम्बरों के साथ-साथ यापनीयों और यापनीयों के कारण पुन्नाटसंघीय आचार्यों एवं पंचस्तूपान्वय के आचार्यों पर भी देखा जाता है। इससे यह सिद्ध होता है कि जटासिंहनन्दि उस यापनीय अथवा कूर्चक परम्परा से सम्बन्धित रहे होंगे जो अनेक बातों में श्वेताम्बरों की आगमिक परम्परा के निकट थी। यदि सिद्धसेन श्वेताम्बर और यापनीयों के पूर्वज आचार्य हैं तो यापनीय आचार्यों के द्वारा उनका अनुसरण संभव है।

७. वराङ्गचिरत में, अनेक संदर्भों में आगमों, प्रकीर्णकों एवं निर्युक्तियों का अनुसरण किया गया है। सर्वप्रथम तो उसमें कहा गया है - "वराङ्गमुनि ने अल्पकाल में ही आचारांग और अनेक प्रकीर्णकों का सम्यक् अध्ययन करके क्रमपूर्वक अंगों एवं पूर्वो का अध्ययन किया[२५]। इस प्रसंग में प्रकीर्णकों का उल्लेख महत्त्वपूर्ण है। विषयवस्तु की दृष्टि से तो इसके अनेक सर्गों में आगमों का अनुसरण देखा जाता है। विशेष रूप से स्वर्ग, नरक, कर्मसिद्धांत आदि सम्बन्धी विवरण में उत्तराध्ययन सूत्र का अनुसरण हुआ है। जटासिंहनन्दि ने चतुर्थ सर्ग में जो कर्म सिद्धांत का विवरण दिया है उसके अनेक श्लोक अपने प्राकृत रूप में उत्तराध्ययन के तीसवें कर्म प्रकृति नामक अध्ययन में यथावत् मिलते हैं -

उत्तराध्ययन	वराङ्गचरित
३०/२-३	४/२-३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३०/५-६	४/२४-२५
३०/८-९	४/२५-२६-२७
३०/१०-११	४/२८-२९
३०/१२	४/३३ (आंशिक)
३०/१३	४/३५ (आंशिक)
३०/१५	४/३७

यद्यपि सम्पूर्ण विवरण की दृष्टि से वराङ्गचरित का कर्म सिद्धान्त सम्बन्धी विवरण उत्तराध्ययन की अपेक्षा विकसित प्रतीत होता है। इसी प्रकार की समानता स्वर्ग-नरक के विवरण में देखी जाती है। उत्तराध्ययन में ३६ वें अध्ययन की गाथा क्रमांक २०४ से २१६ तक वराङ्गचरित के नवें सर्ग के श्लोक १-१२ तक किंचित् शाब्दिक परिवर्तन के साथ संस्कृत रूप में पायी जाती हैं। आश्चर्य की बात यह है कि जटासिंहनन्दि भी आगमों के अनुरूप बारह देवलोकों की चर्चा करते हैं।

इसी प्रकार प्रकीर्णक साहित्य की भी अनेक गाथाएँ वराङ्गचरित में अपने संस्कृत रूपांतरण के साथ पायी जाती हैं। देखें -

दंसणभट्ठो भट्ठो, न हु भट्ठो होइ चरणपब्भट्ठो।
दंसणमणुपत्तस्स उ परियडणं नत्थि संसारे ।।६५ ।।
दसणभट्ठो भट्ठो, दंसणभट्ठस्स नत्थि निव्वाणं।
सिज्झंति चरणरहिया, दंसणरहिया न सिज्झंति ।।६६।।

- भक्तपरिज्ञा।

तुलनीय -

दर्शनाद्भ्रष्ट एवानुभ्रष्ट इत्यभिधीयते ।
न हि चारित्रविभ्रष्टो भ्रष्ट इत्युच्यते बुधैः ।।९६।।
महता तपसा युक्तो मिथ्यादृष्टिरसंयतः ।
तस्य सर्वज्ञसंदृष्ट्या संसारोऽनन्त उच्यते ।।९७।।

-वराङ्गचरित, सर्ग २६।

इसी प्रकार वराङ्गचरित के निम्न श्लोक आतुर प्रत्याख्यान में पाए जाते हैं।

एकस्तु में शाश्वतिकः स आत्मा सद्दृष्टिसज्ज्ञानगुणैरूपेतः ।
शेषाश्च में बाह्यतमाश्च भावाः संयोगसल्लक्षणलक्षितास्ते ।।१०१।।
संयोगतो दोषमवाप जीवः परस्परं नैकविधानुबन्धि ।
तस्मादिहसंयोगमतो दुरन्तमाजीवितांतादहमुत्सृजामि ।।१०२
सर्वेषु भूतेषु मनः समं मे वैरं न मे केनचिदस्ति किंचित् ।
आशां पुनः क्लेशसहस्रमूलां हित्वा समाधिं लघु संप्रपद्ये ।।१०३।।

- वराङ्गचरित, सर्ग ३१।

तुलनीय

एगो मे सासओ अप्पा नाण-दंसणसंजुओ।
सेसा मे बहिरा भावा सव्वे संजोगलक्खणा ।।२७।।
संजोगमूला जीवेणं पत्त दुक्खपरंपरा ।
तम्हा संजोगसम्बन्धं सव्वं भावेण वोसिरे ।।२८।।
सम्मं मै सव्वभूएसु वेरं मज्झ न केणई।
आसाओ वोसिरित्ताणं समाहिं पडिवज्जए ।।२२।।

- आतुर प्रत्याख्यान

ये तीन गाथाएं आतुरप्रत्याख्यान से सीधे वराङ्गचरित में गईं या मूलाचार के माध्यम से वराङ्गचरित में गईं यह एक अलग प्रश्न है। मूलाचार यापनीय ग्रन्थ है। अत: यदि ये गाथाएं मूलाचार से भी ली गईं हों तो भी जटासिंहनन्दि और उनके ग्रन्थ वराङ्गचरित के यापनीय होने की ही पुष्टि होती है। यद्यपि कुन्दकुन्द के ग्रन्थों में भी ये गाथाएं पायी जाती हैं, किन्तु इतना निश्चित है कि कुन्दकुन्द ने भी ये गाथाएं मूलचार से ही ली होंगी। और पुन: मूलाचार में आतुरप्रत्याख्यान की ली गई सभी गाथायें समाहित कर ली गई हैं, अत: अन्ततोगत्वा तो ये गाथायें आतुर प्रत्याख्यान से ही ली गई हैं।

आवश्यकनिर्युक्ति की भी निम्न दो गाथाएं वराङ्गचरित में मिलती हैं -

हयं नाणं कियाहीणं, हया अन्नाणओ किया ।
पासंतो पंगुलो दड्ढो धावमाणो अ अंधओ ।।१।।
संयोगसिद्धिइ फलं वयंति, न हु एकचक्केण रहो पयाइ ।
अंधो य पंगू य वणे समिच्चा, ते संपउत्ता नगरं पविट्ठा ।।२।।

तुलनीय -

क्रियाहीनं च यज्ज्ञानं न तु सिद्धिं प्रयच्छति ।
परिश्यन्यथा पंगु मुग्धो दग्धो दवाग्निना ।।९९।।
तौ यथा संप्रयुक्तौ तु दवाग्निमधिगच्छतः ।
तथा ज्ञानचरित्राभ्यां संसारान्मुच्यते पुमान् ।।१०१।।

-वराङ्गगचरित, सर्ग २६

आगम, प्रकीर्णक और निर्युक्ति साहित्य का यह अनुसरण जटासिंहनन्दि और उनके ग्रंथ को दिगम्बरेतर यापनीय या कूर्चक सम्प्रदाय का सिद्ध करता है।

८. जटासिंहनन्दि ने न केवल सिद्धसेन का अनुसरण किया है अपितु उन्होंने विमलसूरि के पउमचरिय का भी अनुसरण किया है। चाहे यह अनुसरण उन्होंने सीधे रूप से किया हो या रविषेण के पद्मचरित के माध्यम से किया हो किन्तु इतना सत्य है कि उन पर यह प्रभाव आया है। वराङ्गचरित में श्रावक के व्रतों की जो विवेचना उपलब्ध होती है वह न तो पूर्णत: श्वेताम्बर परम्परा के उपासकदशा के निकट है और न पूर्णत: दिगम्बर परम्परा द्वारा मान्य तत्त्वार्थ के पूज्यपाद् देवनन्दी के सर्वार्थसिद्धि के मूलपाठ के निकट है। अपितु वह विमलसूरि के पउपचरिय के निकट है। पउमचरिय के समान ही इसमें भी देशावकासिक व्रत का अन्तर्भाव दिक्व्रत में मानकर उस रिक्त स्थान की पूर्ति के लिए सलेखना को बारहवाँ शिक्षाव्रत माना गया है[२६]। कुन्दकुन्द ने भी इस परम्परा का अनुसरण किया है[२७]। किन्तु कुन्दकुन्द विमलसूरि से तो निश्चित ही परवर्ती हैं और सम्भवत: जटासिंहनन्दि से भी। अत: उनके द्वारा किया गया यह अनुसरण अस्वाभाविक भी नहीं है। स्मरण रहे कि कुन्दकुन्द ने त्रस-स्थावर के वर्गीकरण, चतुर्विध मोक्षमार्ग आदि के सम्बन्ध में भी आगमिक परम्परा का अनुसरण किया है। स्पष्ट है कि विमलसूरि के पउमचरिय का अनुसरण रविषेण, स्वयंभू आदि अनेक यापनीय आचार्यों ने किया है। अत: जटासिंहनन्दि के यापनीय होने की संभावना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रबल प्रतीत होती है ।

९. जटासिंहनन्दि ने वराङ्गचरित के नवें सर्ग में कल्पवासी देवों के प्रकारों का जो विवरण प्रस्तुत किया है वह दिगम्बर परम्परा से भिन्न है । वैमानिक देवों के भेद को लेकर श्वेताम्बर और दिगम्बर परम्परा में स्पष्ट रूप से मतभेद है । जहाँ श्वेताम्बर परम्परा वैमानिक देवों में १२ विभाग मानती है वहाँ दिगम्बर परम्परा उनके१६ विभाग मानती है । इस संदर्भ में जटासिंहनन्दि स्पष्ट रूप से श्वेताम्बर या आगमिक परम्परा के निकट हैं । वे नवें सर्ग के द्वितीय श्लोक में स्पष्ट रूप से यह कहते हैं कि कल्पवासी देवों के बारह भेद हैं[२८]। पुन: इसी सर्ग के सातवें श्लोक से नवें श्लोक तक उत्तराध्ययन सूत्र के समान उन १२ देवलोकों के नाम भी गिनाते हैं[२९]। यहाँ वे स्पष्ट रूप से न केवल दिगम्बर परम्परा से भिन्न होते हैं बल्कि किसी सीमा तक यापनीयों से भिन्न प्रतीत होते हैं । यद्यपि स्मरण रखना होगा कि यापनीयों में प्रारम्भ में आगमों का अनुसरण करते हुए १२ भेद मानने की प्रवृत्ति रही होगी किन्तु बाद में दिगम्बर परम्परा या अन्य किसी प्रभाव से उनमें १६ भेद मानने की परम्परा विकसित हुई होगी । तत्त्वार्थसूत्र के सर्वार्थसिद्धि मान्य पाठ में तथा तिलोयपण्णत्ति में इन दोनों ही परम्पराओं के बीज देखे जाते हैं । तत्त्वार्थसूत्र का सर्वार्थसिद्धि मान्य यापनीय पाठ जहां देवों के प्रकारों की चर्चा करता है वहां वह १२ का निर्देश करता है किन्तु जहाँ वह उनके नामों का विवरण प्रस्तुत करता है तो वहां १६ नाम प्रस्तुत करता है[३०]। यतिवृषभ की तिलोयपण्णत्ति में भी १२ और १६ दोनों प्रकार की मान्यताएं होने के स्पष्ट उल्लेख पाये जाते हैं[३१]। इससे स्पष्ट लगता है कि प्रारम्भ में आगमिक मान्यता का अनुसरण करते हुए यापनीयों में और यदि जटासिंहनन्दि कूर्चक हैं तो कूर्चकों में भी कल्पवासी देवों के १२ प्रकार मानने की परम्परा रही होगी । आगे यापनीयों में १६ देवलोकों की मान्यता किसी अन्य परम्परा के प्रभाव से आयी होगी ।

१०. वराङ्गचरित में वरांगकुमार की दीक्षा का विवरण देते हुए लिखा गया है कि -'श्रमण और आर्यिकाओं के समीप जाकर तथा उनका विनयोपचार (वन्दन) करके वैराग्ययुक्त वरांगकुमार ने एकांत में जा सुन्दर आभूषणों का त्याग किया तथा गुण, शील, तप एवं प्रबुद्ध तत्त्व रूपी सम्यक् श्रेष्ठ आभूषण तथा श्वेत शुभ्र वस्त्रों को ग्रहण करके वे जिनेन्द्र द्वारा प्रतिपादित मार्ग में अग्रसर हुए[३२]। दीक्षित होते समय मात्र आभूषणों का त्याग करना तथा श्वेत शुभ्र वस्त्रों को ग्रहण करना दिगम्बर परम्परा के विरोध में जाता है । इससे ऐसा लगता है कि जटासिंहनन्दि दिगम्बर परम्परा से भिन्न किसी अन्य परम्परा का अनुसरण करने वाले थे । यापनीयों में अपवाद मार्ग में दीक्षित होते समय राजा आदि का नग्न होना आवश्यक नहीं माना गया था । चूंकि वरांगकुमार राजा थे अत: सम्भव है कि उन्हें सवस्त्र ही दीक्षित होते दिखाया गया हो । यापनीय ग्रन्थ भगवती आराधना एवं उसकी अपराजिता टीका में हमें निर्देश मिलते हैं कि राजा आदि कुलीन पुरुषों के दीक्षित होते समय या संथारा ग्रहण करते समय अपवाद लिंग (सवस्त्र) रख सकते हैं[३३]। पुन: वराङ्गचरित में हमें मुनि की चर्या के प्रसंग में हेमन्त काल में शीत-परिषह सहते समय मुनि के लिए मात्र एक बार दिगम्बर शब्द का प्रयोग मिला है[३४]। समान्यतया 'विशीर्णवस्त्रा' शब्द का प्रयोग हुआ है । एक स्थल पर अवश्य मुनियों को 'निरस्त्रभूषा' कहा गया है[३५] किन्तु निरस्त्रभूषा का अर्थ साज-सज्जा से रहित होता है, नग्न नहीं। - ये कुछ ऐसे तथ्य हैं जिन पर वराङ्गचरित की परम्परा का निर्धारण करते समय गम्भीरता से विचार किया जाना चाहिए । मैं चाहूंगा कि आगे आने वाले विद्वान् सम्पूर्ण ग्रन्थ गम्भीरतापूर्वक आलोडन करके इस समस्या पर विचार करें ।

साध्वियों के प्रसंग में चर्चा करते समय उन्हें जीर्ण-शीर्ण वस्त्रों को धारण करने वाली अथवा विशीर्ण वस्त्रों से आवृत्त देह वाली कहा गया है[३६]। इससे भी यह सिद्ध होता है कि वराङ्गचरितकार जटासिंहनन्दि को स्त्री दीक्षा और सवस्त्र दीक्षा मान्य थी । जबकि कुन्दकुन्द स्त्री दीक्षा का सर्वथा निषेध करते हैं[३७]।

११. वराङ्गचरित में स्त्रियों की दीक्षा का स्पष्ट उल्लेख है[३८] उसमें कहीं भी ऐसा उल्लेख नहीं है कि स्त्री को उपचार से महाव्रत होते हैं जैसा कि दिगम्बर परम्परा मानती है । इस ग्रन्थ में उन्हें तपोधना, अमित-प्रभावी, गणाग्रणी, संयमनायिका जैसे सम्मानित पदों से अभिहित किया गया है[३९]। साध्वी वर्ग के प्रति ऐसा आदरभाव कोई श्वेताम्बर या यापनीय आचार्य ही प्रस्तुत कर सकता है । अत: इतना निश्चित है कि जटासिंहनन्दि का वराङ्गचरित कुन्दकुन्द की उस दिगम्बर परम्परा का ग्रन्थ नहीं हो सकता जो स्त्रियों की दीक्षा का निषेध करती हो या उनके उपचार से ही महाव्रत कहे गये हैं, ऐसा मानती हो । कुन्दकुन्द ने सूत्रप्राभृत गाथा क्रमांक २५ में एवं लिङ्गप्राभृत गाथा क्रमांक २० में स्त्री दीक्षा का स्पष्ट निषेध किया है ।

१२. वराङ्गचरित में श्रमणों और आर्यिकाओं को वस्त्रदान की चर्चा है । यह तथ्य दिगम्बर परम्परा के विपरीत है । उसमें लिखा है कि "वह नृपति मुनि पुङ्गवों को आहारदान, श्रमणों और आर्यिकाओं को वस्त्र और अन्नदान तथा दरिद्रों को याचित दान (किमिच्छदानं) देकर कृतार्थ हुआ[४०]।" यहाँ प्रश्न उपस्थित होता है कि मूल श्लोक में जहाँ मुनि पुङ्गवों के लिए आहारदान का उल्लेख किया गया है वहाँ श्रमण और आर्यिकाओं के लिए वस्त्र और अन्न (आहार) के दान का प्रयोग हुआ है । संभवत: यहाँ अचेल मुनियों के लिए ही 'मुनिपुङ्गव' शब्द का प्रयोग हुआ है और सचेल मुनिके लिए 'श्रमण' । भगवती आराधना एवं उसकी अपराजित टीका से यह स्पष्ट है कि यापनीय परम्परा में अपवाद मार्ग में मुनि के लिए वस्त्र-पात्र ग्रहण करने का निर्देश है[४१]।

वस्त्रादि के संदर्भ में उपरोक्त सभी तथ्यों को दृष्टिगत रखते हुए यह कहा जा सकता है कि जटासिंहनन्दि और उनका वराङ्गचरित भी यापनीय/कूर्चक परम्परा से सम्बद्ध रहा है ।

१३. वर्ण-व्यवस्था के सन्दर्भ में भी वराङ्गचरित के कर्त्ता जटासिंहनन्दि का दृष्टिकोण आगमिक धारा के अनुरूप अति उदार है । उन्होंने वराङ्गचरित के पच्चीसवें सर्ग में जन्मना आधार पर वर्ण व्यवस्था का स्पष्ट निषेध किया है । वे कहते हैं कि वर्ण व्यवस्था कर्म-विशेष के आधार पर हीं निश्चित होती है इससे अन्य रूप में नहीं[४२]। जातिमात्र से कोई विप्र नहीं होता, अपितु

ज्ञान, शील आदि से ब्राह्मण होता है। ज्ञान से रहित ब्राह्मण भी निकृष्ट है किन्तु ज्ञानी शूद्र भी वेदाध्ययन कर सकता है। व्यास, वसिष्ठ, कमठ, कण्ठ, द्रोण, पराशर आदि ने अपनी साधना और सदाचार से ही ब्राह्मणत्व को प्राप्त किया था[४३]। इस प्रकार हम देखते हैं कि वर्ण-व्यवस्था के संदर्भ में वराङ्गचरितकार का दृष्टिकोण उत्तराध्ययन आदि आगमिक धारा के निकट है। पुन: इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि जटासिंहनन्दि उस दिगम्बर परम्परा के नहीं हैं तो शूद्र जल-त्याग और शूद्रमुक्ति-निषेध करती है। इससे जटासिंहनन्दि और उनके ग्रन्थ वराङ्गचरित के यापनीय अथवा कूर्चक होने की पुष्टि होती है।

संदर्भ

१. यापनीय और उनका साहित्य; डॉ० कुसुम पटोरिया पृ०, १५७-१५८।

२. वरांगनेय सर्वांगैर्वराङ्गचरितार्थवाक्।
कस्य नोत्पादयेद्गाढ़मनुरागं स्वगोचरम्॥
- हरिवंशपुराण (जिनसेन), १/३४-३५

३. काव्यानुचिन्तने यस्य जटा: प्रचलवृत्तय:।
अर्थान्स्मानुवदन्तीव जटाचार्य: स नोऽवतात्॥
- आदि पुराण (जिनसेन), १/५०

४. जेहिं कए रमणिज्जे वरंग-पउमाण चरियवित्थारे।
कह व ण सलाहणिज्जे ते कइणो जडिय-रविसेणो॥
-कुवलयमाला,

५. ऐदनय श्रोतृवॅवों जटासिंहनंद्याचार्यर वृत्तं - उद्धृत वराङ्गचरित,भूमिका, पृ० ११

६. मुणिमहसेणु सुलोयणु जेण पउमचरिउ मुणिरविसेणेण।
जिणसेणेण हरिवंसु पवित्तु जडिलमुणिणा वरंगचतित्तु॥
- हरिवंश, उद्धृत वराङ्गचरित, भूमिका, पृ० १०

७. आर्यनुत-गृध्रपिंछा -चार्य-जटाचार्य-विश्रुतश्रुतकीर्त्याचार्य।
पुरस्सरमप्पा-चार्य परम्परॅयॅ कुडुग भव्योत्सवमं॥
- आदिपुराण, १/१२

८. वर्यलोंकोत्तमर्भाविसुवॉडनधनत्युन्नतकॉडकुंदाचार्य-
चॉरित्रत्लाकररधिकगुणर्सज्जटासिंहनंद्याचार्य
श्रीकूर्चिभट्टारकरुदितयशर्मिक्कपेपिगॅ लोकाश्चर्यनिष्कर्मरॅम्मं पारॅमाडिसुगॅ संसारकांतारदिंदं॥
- धर्मामृत, १/१३

९. विदिरपोदर तॉलॅयॅर्नॅ तू - गिदाडाबिदिजिनमुनिप - जटाचार्यर धैर्यद् पॅपु गेल्दुदु पसर्गदलुर्केयेननिसि नॅगेदुमिगॅ सोगयिसिदं॥
- पार्श्वपुराण, १/१४

१०. वंद्यर् जटासिंहणंद्याचार्यदीद्रणद्याचार्यादिरमुनिपराकाणूर्गणंद्यपृथिवियॉलगॅल्लं॥
- अनन्तनाथ पुराण, १/१७

११. नडॅवलियोल् तन्नं समं बडॅदारुं नडदरिल्ल गडॅमतेदॅर्षु।
नुडियुं नडेदुवो पदुलिके यॅडॅग जटासिंहणंदि मुनिपुंगवना॥
- पार्श्व पुष्पदंत-पुराण, १/२९

१२. कार्यविदर्हद्वल्याचार्यजटासिंहनंदिनामोद्दामाचार्यवरगृध्रपिंछाचार्यर चरणार विंदवृंदस्तोत्रं॥
- शांतिनाथपुराण, १/१९

१३. धैर्यपरगृध्र पिंछाचार्यर जटासिंहनंदि जगतीख्याताचार्यर प्रभावमत्या-श्चर्यमदं पागलूवडब्जजजंगमसाध्यं॥ - नेमिनाथपुराण,१/१४

१४. हरिवशं (जिनसेन), १/३५

१५. जैनधर्म का यापनीय सम्प्रदाय, प्रो० सागरमल जैन

१६. ....यापनीय संघ प्रतीतकण्डूर्ग्गणाविध ......।
जैन शिलालेख संग्रह, भाग २, लेख क्रमांक, १६०

१७. वराङ्गचरित, भूमिका (अंग्रेजी), पृ०, १६

१८. जैन शिलालेख संग्रह, भाग-२, लेख क्रमांक २६७,२७७,२९९

१९. वही - भाग -२, लेखक्रमांक, २६७, २७१, २९९
(ज्ञातव्य है कि काणूरगण को मूलसंघ, कुन्दकुन्दान्वय और मेष पाषाण गच्छ से जोड़ने वाले ये लेख न केवल परवर्ती हैं अपितु इनमें एकरूपता भी नहीं है।)

२०. वराङ्गचरित, सं.ए० एन० उपाध्ये, भूमिका (अंग्रेजी), पृ० १६ पर उद्धृत- वंद्यर्जटासिंहणद्याचार्यदींद्रणंद्याचार्यादि मुनि परा काणूर्गणं................।
-अन्नतनाथ पुराण, १/१७

२१. जैनधर्म का यापनीय सम्प्रदाय, प्रो० सागरमल जैन, पृ०१४५ १४६।

२२. वराङ्गचरित्, सं० ए० एन उपाध्ये, भूमिका (अंग्रेजी), पृ०१७।

२३. यापनीय पर कुछ और प्रकाश, ए० एन० उपाध्ये, अनेकांत, वीर निर्वाण विशेषांक, १९७५।

२४. य़तीणां (३/७), यतीन्द्र (३/४३), यतिपतिना (५/११३), यति (५/११४), यतिना (८/६८), वीरचर्या यतयो-बभूवु: (३०/६१), यतिप्रति (३०/९९), यति: (३१/२१)।

२५. आचारमादौ समधीत्य धीमान्प्रकीर्णकाध्यायमनेकभेदम्।
अङ्गानि पूर्वांश्च यथानुपूर्व्यामल्पैरहोभि: सममध्यगीष्ट॥
- वराङ्गचरित, ३१/१८

२६. स्थूलामहिंसामपि सत्यवाक्यमचोरतादाररतिव्रतं च।
भोगोपभोगार्थपरिप्रमाणमन्वर्थदिग्देशनिवृत्तितां च॥
सामायिकं प्रोषधपात्रदानं सल्लेखनां जीवितसंशये च।
गृहस्थधर्मस्य हि सार एष: संक्षेपतस्तेऽभिनिगद्यते स्म॥
-वही, २२/२९-३०

तुलनीय :

पञ्च य अणुव्वयाइं. तिण्णेव गुणव्वयाइ भणियाइं।
सिक्खावयाणि एत्तो, चत्तारि जिणोवइट्ठाणि॥११२॥
थूलयरं पाणिवहं, मूसावायं अदत्तदाणं च।
परजुवईण निवित्ती, संतोसवयं च पञ्चमयं॥११३॥
दिसिविदिसाण य नियमो, अणत्थदण्डस्थ वज्जणं चेव।
उवभोगपरीमाणं, तिण्णेव गुणव्वया ऐए॥११४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सामाइयं च उववासपोसहो अति हिंसविभागो य ।
अन्तेसमाहिमरणं, सिक्खासु वयाइं चत्तारि ।।११५।।
- पउमचरिय, उद्देशक १४।

२७. पंचेवणुव्वायाइं गुणव्वयाइं हवंति तह तिण्णि ।
सिक्खावय चत्तारि य संजमचरणं च सायारं ।।
थूले तसकायवहे थूले मोसे अदत्तथूले य ।
परिहरो परमहिला परिग्गहारंभ परिमाणं ।।
दिसिविदिसिमाण पढमं अणत्थदंडस्स वज्जणं विदियं ।
भोगोपभोगपरिमा, इयमेव गुणव्वया तिण्णि ।।
सामाइयं च पढमं विदियं च तहेव पोसहं भणियं ।
तइयं च अतिहिपुज्जं चउत्थ सल्लेहणा अंते ।।
- चरित्तपाहुड, गाथा २३-२६

२८. दश प्रकारा भवनाधिपानां ते व्यन्तरास्त्वष्टविधा भवन्ति ।
ज्योतिर्गणाश्चापि दशार्धभेदा द्विषट्प्रकारा: खलु कल्पवासा: ।।
- वराङ्गचरित, ९/२

२९. सीधर्मकल्प: प्रथमोपदिष्ट ऐशानकल्पश्च पुनर्द्वितीय: ।
सनत्कुमारो द्युतिमांस्तृतीयो माहेन्द्रकल्पश्च चतुर्थ उक्त: ।।
ब्राह्मं पुन: पञ्चममाहुरार्यास्ते लान्तवं षष्ठमुदाहरन्ति ।
स सप्तम: शुक्र इति प्ररुढ: कल्प: सहस्रार इतोऽष्टमस्तु ।।
यमानतं तन्नवमं वदन्ति स प्राणतो यो दशमस्तु वर्ण्य: ।
एकादशं त्वारणमामनन्ति तमारणं द्वादशमच्युतान्तम् ।।
- वराङ्गचरित, ९/७-८-९

३०. दशाष्टपञ्चद्वादशविकल्पा: कल्पोपपन्नपर्यन्ता: ।
-तत्त्वार्थसूत्र (विवेचक- पं० फूलचंद्रशास्त्री) ४/३, पृ० ११८
देखें - ४/१९ में १६ कल्पों का निर्देश है ।

३१. वारस कप्पा केई केई सोलस वदंति आइरिया ।।११५।।
सोहम्मीसाणसणक्कुमारमाहिंदबम्हलंतवया।
महसुक्कसहस्सारा आणदपाणदयआरणच्चुदया ।।१२०।।
- तिलोयपण्णत्ती, आठवां अधिकार ।

३२. ततो हि गत्वा श्रमणार्जिकानां समीपमभ्येत्य कृतापचारा: ।
विविक्तदेशे विगतानुरागा जहुर्वराङ्ग्यों वर भूषणानि ।।९३।।
गुणांश्च शीलानि तपांसि चैव प्रबुद्धतत्त्वा: सितशुभ्रवस्त्रा:।
संगृह्य सम्यग्वरभूषणानि जिनेन्द्रमार्गाभिरता बभूवु: ।।९४।।
- वराङ्गचरित २९,९३,९४

३३. आवसधे वा अप्पाउग्गे जो वा महड्ढिओ हिरिमं ।
मिच्छजणे सजणे वा तस्स होज्ज अववादियं लिंगं ।।७८।।
आगे इसकी टीका देखें- 'अपवादिकलिंग'-सलेच लिंग' भगवती आराधना यानी अपराजित टीका, पृ० ११४

३४. हेमन्तकाले धृतिबद्धकक्षा दिगम्बरा ह्यभ्रवकाशयोगा: ।।
- वराङ्गचरित, ३०/३२

३५. निरस्तभूषा: कृतकेशलोचा: । -वही, ३०/२

३६. विशीर्णवस्त्रावृतगात्रयष्टयस्ता: काष्ठमात्रप्रतिमा बभूवु: ।
- वही, ३१/१३

३७. (अ) इत्थीसु ण पावया भणिया- सूत्रप्राभृत, २५
(ब) दंसणणाणं चरित्ते महिलावग्गम्मि देहि वि वीसट्ठो ।
पासत्थ वि हु णियट्ठो भाव विणट्ठो ण सो समणो ।।
- लिंगपाहुड, २०

३८. (अ) नरेन्द्रपत्न्य: श्रुतिशीलभूषा ....प्रतिपन्नदीक्षास्तदा बभूवु: परिपूर्णकामा: ।।३१/१।। दीक्षाधिराज्यश्रियमभ्युपेता ....।।३१/२।।
(ब) नरवरवनिता मिच्य साध्वीशमुपययु: स्वपुराणि भूमिपाला: ।।२९/९९।।
(स) व्रतानि शीलान्यमृतोपमानि ....३१/४।।
(द) महेन्द्रपत्न्य: श्रमणत्वमाप्य ....।।३१/११३।।

३९. तपोधनानाममितप्रभावा गणाग्रणी संयमनायका सा ।
-वराङ्गचरित, ३१/६

४०. आहारदानं मुनिपुङ्गवेभ्यो, वस्त्रान्नदानं श्रमणार्यिकाभ्य: ।
किमिच्छदानं खलु दुर्गतेभ्यो दत्वाकृतार्थो नृपतिर्बभूव ।।
-वही, २३/९२

४१. (अ) ..... आपवादिक लिंग सचेललिंग ..... ।
- भगवती आराधना, टीका, पृ० ११४
(ब) चत्तारिजणां भत्तं उवकप्पेति ....।
चत्तारिजणा रक्खन्ति दवियमुवकप्पियं तयं तेहिं ।
-भगवती आराधना, ६६१ एवं ६६३

४२. क्रियाविशेषाद्व्यवहारमात्राद्दयाभिरक्षाकृषिशिल्पभेदात् ।
शिष्टाश्च वर्णांश्चतुरो वदन्ति न चान्यथा वर्णचतुष्टयं स्यात् ।।
- वराङ्गचरित, २५/११

४३. ज्ञानं च न ब्रह्म यतो निकृष्ट: शूद्राऽपि वेदाध्ययनं करोति ।।४२।।
विद्याक्रियाचारुगुणै: प्रहीणो न जातिमात्रेण भवेत्स विप्र:।
ज्ञानेन शीलेन गुणेन युक्तं तं ब्राह्मणं ब्रह्मविदो वदन्ति ।।४३।।
व्यासो वसिष्ठ: कमठश्च कण्ठ: शक्त्युद्र द्रोणपराशरौ च ।
आचारवन्तस्तपसाभियुक्ता ब्रह्मत्वमायु: प्रतिसंपदाभि: ।।४४।।
- वही, सर्ग २५ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org